दैनिक भास्कर

Date: 11-04-26

अमेरिका-ईरान शांति प्रयास कैसे सफल होंगे?

संपादकीय

कूटनीति के छात्रों को पढ़ाया जाता है कि जंग खत्म कर शांति की बहाली के लिए हुई वार्ताओं की सफलता की तीन शर्तें होती हैं। पहली, क्या युद्धरत दोनों पक्षों के लिए सही समय आ चुका है, यानी क्या दोनों पक्ष युद्ध से थककर शांति को ज्यादा लाभकारी मानने लगे हैं? दूसरी, क्या ऐसी स्थिति बन चुकी है कि समझौते की भाषा / शर्तें रचनात्मक रूप से इतनी गोलमोल रखी जाएं कि दोनों पक्ष जीत का दावा कर सकें? और तीसरी, क्या मध्यस्थता कराने वाला पक्ष इतना समर्थ, सबल और सक्षम है कि दोनों को समझौते के लिए मजबूर करे, जैसे किसी जमाने में यूएन और यूएस हुआ करते थे। इन तीनों पैरामीटर्स में ट्रम्प ने एक चौथा फैक्टर जोड़ दिया है- उनका अप्रत्याशित आचरण । ट्रम्प युद्ध को खत्म करना लाभकारी तब मानेंगे, जब उनके अमेरिकी समर्थकों में संदेश जाए कि उन्होंने दुश्मन को झुकाकर अमेरिका को फिर महान बना दिया। लेकिन क्या अमेरिकी जनता यह नहीं पूछेगी कि लड़ाई का औचित्य क्या था ? उधर ईरान की जनता ने अद्भुत बलिदानी जज्बा और सामूहिक परिपक्वता दिखाते हुए राष्ट्र, संस्कृति और समाज को सर्वोपरि रखा । नेतृत्व - विहीनता की स्थिति में भी सामूहिक नेतृत्व को स्वीकारा। अगर अमेरिका होर्मुज पर ईरान का दावा माने और ईरान परमाणु हथियार न बनाने का वादा करे तो मध्य मार्ग निकल सकता है।

Date: 11-04-26

एक मैनेजर और एक अच्छे लीडर में क्या अंतर होता है?

डॉ. राम चरण, (विश्व विख्यात लेखक और कई शीर्ष कम्पनियों के सलाहकार)

हर मैनेजर बहुत अच्छा लीडर भी बनना चाहता है। लेकिन इन दोनों में अंतर है। आप जानते हैं- क्या? आज की दुनिया में इसका जवाब बहुत सरल है। एक बहुत अच्छा लीडर बदलावों को पहले ही देख लेता है और उन पर विवेकपूर्ण ढंग से काम करता है। मैनेजर प्रतिक्रिया देता है; लीडर पूर्वानुमान लगा लेता है।

हम एआई और अभूतपूर्व गति के युग में जी रहे हैं। हर दिन नए घटनाक्रम सामने आते हैं। घोषणाएं होती हैं। सोशल मीडिया तरह-तरह के विचारों से भर जाता है। शोर बना रहता है। लेकिन आने वाले कल के विनर्स वे नहीं होंगे, जो इस

शोर पर प्रतिक्रिया देते हैं। वे वो होंगे, जो एक्शंस को देखते हैं, तथ्यों को जोड़ते हैं और उनके आधार पर एक स्पष्ट विचार-प्रक्रिया निर्मित करते हैं।

अधिकांश लोग बदलावों को सुर्खियों, भाषणों और सोशल मीडिया रिएक्शंस के जरिये समझते हैं। यह एक भूल है। घोषणाएं भ्रामक हो सकती हैं। ओपिनियन भटका सकते हैं। प्रतिक्रियाएं तो अकसर भावनात्मक ही होती हैं। लेकिन एक्शंस यानी ठोस कार्रवाइयां अलग होती हैं। उन्हें जांचा-परखा जा सकता है। वे मंशाओं को उजागर करती हैं। वे समय के साथ सामने आती हैं और हमें बताती हैं कि कोई व्यक्ति, कम्पनी या देश किस दिशा में आगे बढ़ रहा है। हर मैनेजर, लीडर और व्यक्ति को एक आदत विकसित करनी चाहिए : वास्तविक कार्रवाइयों की पहचान करना और उन्हें शोर से अलग करना।

यह वो अनुशासन है, जो सब कुछ बदल देता है। यह वो अभ्यास है, जिसे मैं अपनाने के लिए प्रेरित करता हूं। समय के साथ कार्रवाइयों का अवलोकन करें। किसी एक क्षण को न देखें, बल्कि क्रम को देखें। उन्हें एक सूत्र में पिरोएं। फिर स्वयं से पूछें : यह पैटर्न क्या संकेत देता है? आगे क्या हो सकता है? एक्शंस को जोड़कर एक सुसंगत लाइन-ऑफ-थिंकिंग बनाने की यह क्षमता आज के समय में लीडरशिप के सबसे शक्तिशाली कौशलों में से एक है। और आप इसका अभ्यास रोज कर सकते हैं।

रोज केवल दस मिनट एक्शंस का अवलोकन करने और तथ्यों को जोड़ने (कनेक्टिंग डॉट्स) में लगाएं। समय के साथ इसका प्रभाव बढ़ता जाता है। आपका माइंड अधिक तेज होता है, आपके निर्णयों में सुधार आता होता है और आपकी अंतर्दृष्टियां विकसित होती हैं- ठीक वैसे ही जैसे बैंक खाते में चक्रवृद्धि ब्याज। छोटे-छोटे दैनिक निवेश असाधारण परिणाम देते हैं।

पूर्वानुमान कोई जादू नहीं है, यह एक मानवीय कौशल है। कुछ लोग मानते हैं कि भविष्य का अनुमान लगाने के लिए विशेष प्रतिभा की आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से पूर्वानुमान लगा सकते हैं। जब आप किसी मित्र से बातचीत करते हैं, तो अकसर उसके अगला शब्द कहने से पहले ही उसका अनुमान लगा लेते हैं। जब आप क्रिकेट मैच देखते हैं, तो मैदान में निर्मित होने वाली स्थिति को पढ़ते हैं और आगे क्या होगा, इसका कयास लगा लेते हैं। हमारा मस्तिष्क इसी तरह से बना है।

यही स्वाभाविक क्षमता एआई का आधार भी है। एआई भी पैटर्न्स का अवलोकन करता है और पूर्वानुमान लगाता है। आप भी कर सकते हैं।

आप ऑब्जर्व करते हैं। आप पूर्वानुमान लगाते हैं। यदि आप गलत होते हैं, तो एडजस्ट करते हैं। अगली बार आप अधिक सटीक होते हैं। यही सीखने की प्रक्रिया है। इसी तरह से लीडर्स बनते हैं।

अपने क्षेत्र में किसी भी प्रमुख लीडर, बड़ी कंपनी या किसी महत्वपूर्ण डेवलपमेंट को देखें। भावनात्मक प्रतिक्रिया न दें। किसी एक खबर के आधार पर राय न बनाएं। इसके बजाय, पिछले पांच या छह महीनों में लिए गए एक्शंस को देखें। उन्हें क्रम में रखें। फिर तीन प्रश्न पूछें : सबसे पहले कौन-से कार्य हुए? उसके बाद क्या हुआ? कौन-से पैटर्न उभर रहे हैं? फिर यह अनुमान लगाने का प्रयास करें कि आगे क्या हो सकता है। आप गलत हो सकते हैं- यह पूरी तरह स्वीकार्य है। महत्वपूर्ण यह है कि आप अपने मानसिक कौशल का निर्माण कर रहे हैं। हर अभ्यास इसे और मजबूत बनाता है।

आज के दौर में अगर आप अपने संस्थान के बाहर क्या हो रहा है, उसे समझ नहीं पाते, तो अनिश्चितता से नहीं निपट सकते। आप हमेशा प्रतिक्रिया करते रहेंगे, नेतृत्व नहीं कर पाएंगे। अच्छे लीडर्स एक साथ दो जिम्मेदारियां निभाते हैं। उनकी एक नजर आंतरिक क्रियान्वयन पर होती है- आज के काम को सही ढंग से पूरा करना। दूसरी नजर क्षितिज पर होती है- जो आने वाला है, उसे पहले से समझना। सूचना, डेटा और अंतर्दृष्टि अब चौबीसों घंटे उपलब्ध हैं। एडवांटेज उसी को मिलता है, जो उन्हें देखने, जोड़ने और समझने की कला में माहिर हो।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-04-26

एक नई शुरुआत

संपादकीय

बांग्लादेश के विदेश मंत्री खलीलुर रहमान ने इस सप्ताह नए प्रधानमंत्री के विदेश मामलों के सलाहकार डुमायूँ कबीर के साथ भारत का दौरा किया। उम्मीद है कि इस दौरे से ढाका में बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) के नेतृत्व वाली नई सरकार और भारत सरकार के बीच संबंधों में सुधार होगा। विदेश मंत्री के रूप में रहमान का यह पहला विदेश दौरा नहीं है। पिछले महीने वह इस्लामिक सहयोग संगठन (ओआईएस) की बैठक के लिए सऊदी अरब गए थे, जहां उन्होंने पाकिस्तान सहित कई देशों के साथ द्विपक्षीय बैठकें कीं। खबरों के अनुसार, भारत में हुई उनकी बैठक में बांग्लादेश ने अपनी पूर्व प्रधानमंत्री शेख हसीना के प्रत्यर्पण की मांग रखी, जो इस समय भारत में निर्वासन में हैं।

फिर भी, भारत को इस महत्त्वपूर्ण रिश्ते को फिर से मजबूत करने के लिए लगातार प्रयास करते रहना चाहिए। अतीत में उससे कई गलतियां हुई हैं। बांग्लादेश की घटनाओं और चुनावों के कारण मजबूर होने से पहले ही उसे बीएनपी के साथ संबंध सुधारना शुरू कर देना चाहिए था। असम और पश्चिम बंगाल विधान सभा चुनावों के प्रचार के दौरान व्याप्त तनावपूर्ण माहौल से इस प्रक्रिया में और भी बाधा आ रही है, जहां कथित 'घुसपैठ' एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा है। बांग्लादेश में भी विरोध प्रदर्शन और कट्टरपंथी गतिविधियां हुई हैं, जिनमें अखबारों समेत कथित 'भारत समर्थक' हितों और गतिविधियों को निशाना बनाया गया है। कूटनीति इस कठिन राजनीतिक माहौल को नजरअंदाज नहीं कर सकती, बल्कि इससे पार पाने के लिए उसे प्रयासरत रहना चाहिए।

सहयोग के लिए एक व्यावहारिक एजेंडा है जिस पर दोनों पक्षों को काम करना चाहिए। कनेक्टिविटी अवसंरचना, व्यापार सुगमता और ऊर्जा नीति ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें प्रभावी रूप से राजनीति से मुक्त किया जा सकता है और जिनसे ऐसे समाधान निकल सकते हैं जिनमें दोनों पक्ष अपनी जीत का दावा कर सकें। इस तरह के ठोस परिणाम सद्भावना पैदा कर सकते हैं और साथ ही किसी भी सरकार को कठिन राजनीतिक सवालों का तुरंत सामना करने से बचा सकते हैं। यह निर्विवाद है कि बांग्लादेश में चीन की बढ़ती रणनीतिक उपस्थिति स्वाभाविक रूप से भारत के लिए चिंता का विषय है और इससे इस सहयोग में तत्परता आएगी, लेकिन भारत को निश्चित रूप से बांग्लादेश को चीन के साथ अपनी रणनीतिक प्रतिस्पर्धा में मोहरे के रूप में इस्तेमाल करने के प्रलोभन से बचना चाहिए। न ही बांग्लादेश को पाकिस्तान के अधीन माना जाना चाहिए,

भले ही वह उस देश के साथ संबंधों को सुधारने का प्रयास कर रहा हो। इसके बजाय, उसे निरंतर उच्च स्तरीय सहयोग बनाए रखने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो यह संकेत दे कि भारत बांग्लादेश को एक ऐसे पड़ोसी के रूप में गंभीरता से लेता है जिसके अपने वैध हित हैं और जो राजनीतिक बदलाव से गुजरा है।

बीएनपी नेतृत्व को वह कित देने के लिए और अधिक प्रयास करने होंगे कि वह समावेशी शासन करना चाहता है और अपने राजनीतिक गठबंधन में अल्पसंख्यक विरोधी और भारत विरोधी तत्वों पर लगाम लगाएगा । उसे यह समझना होगा कि यदि उसे क्षमा करना और भूलना कठिन लग रहा है, तो भारत के साथ भी ऐसा ही है। पार्टी के पिछले कार्यकाल ने भारत में कड़वाहट का गहरा असर छोड़ा है। लेकिन यह दशकों पहले की बात है, और तब से बहुत कुछ बदल गया है। दोनों देशों ने आर्थिक विकास किया है और ऊर्जा सुरक्षा जैसे मुद्दों पर से समान चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। सहयोग करने के लिए वे बहुत कुछ कर सकते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय नेतृत्व बांग्लादेश की नई सरकार को यह स्पष्ट करे कि वह उसे सत्ता से हटाने या हेरफेर करने का प्रयास नहीं कर रहा है, बल्कि सह-अस्तित्व और सहयोग का एक नया स्वरूप खोजना चाहता है। पड़ोसी देशों के संबंध एक ही यात्रा से नहीं सुधर सकते, लेकिन यह कम से कम एक अच्छी शुरुआत होगी। इसके बाद सरकार के विभिन्न स्तरों पर निरंतर संपर्क बनाए रखना आवश्यक है।

Date: 11-04-26

डिजिटल क्रांति से बाहर होती जनता

देवाशिष पांडा, (लेखक आईआरडीएआई के पूर्व चेयरमैन और वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवा विभाग के पूर्व सचिव हैं)

पिछले एक दशक में भारत की अर्थव्यवस्था लगातार बेहतरी की दिशा में रही है। देश में डिजिटल प्राथमिकता वाले नीतिगत सुधारों ने इसे बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभाई है। इन सुविचारित रणनीतिक हस्तक्षेपों ने एक ऐसा तंत्र तैयार किया है जो नागरिकों को सशक्त बनाता है।

जन धन योजना ने 57 करोड़ से अधिक ऐसे नागरिकों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली में शामिल किया है जिनके पास पहले बैंक खाते तक नहीं थे। जन धन, आधार और मोबाइल के रूप में 'जैम' त्रयी की बुनियाद रखी गई जिसने प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण को सक्षम बनाया और कल्याणकारी वितरण में लीकेज को कम करने का काम किया। यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस (यूपीआई) ने लाखों लोगों को डिजिटल भुगतान की दिशा में प्रेरित करके भारत में डिजिटल पैठ को व्यापक बनाने में मदद की । व्यक्तिगत बीमा प्रीमियम पर माल एवं सेवा कर यानी जीएसटी हटाने से भारत को बीमित देश बनाने की दिशा में आगे ले जाने में सहायता मिल रही है। इन सबको जोड़ने वाला एक तत्त्व है किफायती कनेक्टिविटी । भारत दुनिया के सबसे कम मोबाइल डेटा लागत वाले देशों में शामिल है। यही वजह है कि देश में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा मोबाइल इंटरनेट तक पहुंच रखता है।

इन बातों के बीच भारत ने दुनिया का सबसे महत्त्वाकांक्षी डिजिटल सार्वजनिक अधोसंरचना ढांचा कायम किया है। हालांकि इसका प्रभाव बहुत हद तक स्मार्टफोन पर निर्भर है जो लेनदेन की सुविधा देते हैं। अब स्मार्टफोन की बिक्री में लगातार गिरावट आ रही है। 2025 की चौथी तिमाही में स्मार्टफोन की शिपमेंट सालाना आधार पर 7 फीसदी गिरी, क्योंकि कच्चे माल की बढ़ती कीमत के कारण बिक्री पर असर पड़ा। अब बढ़ती मेमरी लागत, रुपये का अवमूल्यन और 18 फीसदी जीएसटी के कारण बड़ी संख्या में देशवासी डिजिटल अर्थव्यवस्था से बाहर हो रहे हैं। यह समस्या चक्रीय नहीं ढांचागत है।

वर्ष 2026 में तीन शक्तियां एक साथ आई हैं, जिससे उद्योग इसे स्मार्टफोन बाजार के लिए चिंताजनक परिवेश मान रहा। वैश्विक डीआरएएम (डायनेमिक रैंडम एक्सेस मेमरी) की कीमतें 2026 की पहली तिमाही में उससे पिछली तिमाही से 50 फीसदी से अधिक बढ़ गई हैं। एनएएनडी फ्लैश (नॉन-वोलेटाइल मेमरी) की कीमतें 80-90 फीसदी तक बढ़ गई हैं। काउंटर प्वाइंट रिसर्च के मुताबिक एक सस्ते फोन के लिए, अब मेमरी कुल सामग्री लागत का 43 फीसदी हिस्सा रखती है, जिससे एक ही तिमाही में उत्पादन लागत में 25 फीसदी की वृद्धि हुई है।

साथ ही, पिछले वर्ष में रुपये का डॉलर के मुकाबले लगभग 5 फीसदी अवमूल्यन हुआ है, जिससे आयातित घटकों की लागत बढ़ गई है। इसके साथ 18 फीसदी जीएसटी, जो प्रमुख उभरती अर्थव्यवस्थाओं में स्मार्टफोन पर सबसे अधिक कर दर है, को जोड़ दिया जाए तो अब 10,000 रुपये से कम का स्मार्टफोन 25 से 35 फीसदी महंगा हो गया है। भारत हर साल लगभग 1.10 करोड़ स्मार्टफोन बनाता है, जिनमें से अधिकांश 20,000 रुपये से कम की श्रेणी के होते हैं मांग में गिरावट अब देशभर में उत्पादन लाइनों की अर्थव्यवस्था को खतरे में डाल रही है।

अधोसंरचना से जुड़ा मसला

स्मार्टफोन अब बुनियादी आर्थिक अधोसंरचना का हिस्सा बन चुका है। विदर्भ का एक किसान भी अपनी उपज बेचने से पहले मंडी भाव देखने के लिए फोन का उपयोग करता है। आनंद की एक डेरी की सहकारी सदस्य इसके माध्यम से भुगतान प्राप्त करती है और अपने बैंक खाते का इस्तेमाल करती है। बिहार का एक दिहाड़ी मजदूर ग्रामीण रोजगार योजना की मजदूरी के लिए आधार प्रमाणीकरण करता है। ओडिशा का एक ग्रामीण छात्र राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) के दीक्षा ई- लर्निंग प्लेटफॉर्म तक पहुंचता है।

दूसरी और तीसरी श्रेणी के शहर और ग्रामीण भारत अब नए स्मार्टफोन अपनाने में 70 फीसदी से अधिक और भारत के इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में आधे से अधिक का हिस्सा रखते हैं। लगभग 30 फीसदी किसान स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं। स्वरोजगार करने वाले कामगार (जो भारत की कार्यबल का 58 फीसदी हैं) इस उपयोग में 30 से 40 फीसदी हिस्सेदारी रखते हैं। उनके लिए 20,000 रुपये से कम का स्मार्टफोन आजीविका की कुंजी है।

दोतरफा राजकोषीय दलील

जीएसटी दर में बदलाव के लिए ध्यान अक्सर तात्कालिक राजस्व हानि पर होता है। स्मार्टफोन के मामले में गुणक प्रभाव महत्त्वपूर्ण है। पहली बार के उपयोगकर्ता औपचारिक डिजिटल अर्थव्यवस्था में प्रवेश करते हैं। जिससे यूपीआई लेनदेन, ई-कॉमर्स खरीदारी, फिनटेक ऋण और डेटा व डिजिटल सेवाओं पर खर्च बढ़ता है। ये सभी कर राजस्व उत्पन्न करते हैं।

पीएलआई विरोधाभास

यह एक नीतिगत विरोधाभास है। सरकार ने भारत को दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा स्मार्टफोन निर्माता बनाने में भारी निवेश किया है। इसका उत्पादन वित्त वर्ष 25 में 5.45 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच गया और निर्यात 2 लाख करोड़ रुपये को पार कर चुका है।

उत्पादन संबद्ध प्रोत्साहन यानी पीएल आई आपूर्ति पक्ष पर काम करता है और निर्माताओं को भारत में उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करता है। मांग इस बात पर निर्भर करती है कि भारतीय उन फोनों को खरीदने में सक्षम हैं या नहीं, और यह जीएसटी से प्रभावित होती है। आज सरकार पीएलआई के माध्यम से उत्पादन को सब्सिडी देती है, जबकि उपभोग पर 18 फीसदी कर लगाती है। जैसे-जैसे 20,000 रुपये से कम की श्रेणी में कारोबार का आकार कम होता है, निर्माण की अर्थव्यवस्था कमजोर होती है। भारतीय विनिर्माण प्रतिस्पर्धात्मकता मजबूत घरेलू मांग पर निर्भर करती है।

आईटीसी चुनौती और उसका समाधान

इस मुद्दे का कोई भी ईमानदार विश्लेषण एक तकनीकी जटिलता को स्वीकार करना चाहिए। घरेलू स्मार्टफोन निर्माता महत्वपूर्ण इनपुट टैक्स क्रेडिट (आईटीसी) जमा करते हैं, जिसका अनुमान 15-17 फीसदी है, जिसके विरुद्ध वे अपने आउटपुट जीएसटी देनदारी को समायोजित करते हैं। यदि आउटपुट पर दर में कटौती की जाती है और इस आईटीसी को समायोजित करने के लिए कोई तंत्र नहीं होता, तो यह एक उल्टा शुल्क संरचना बना सकता है जो घरेलू निर्माताओं को नुकसान पहुंचाता है।

यह समस्या हल करने लायक है। 20,000 रुपये से कम वाली श्रेणी में घरेलू निर्माताओं के लिए एक सुव्यवस्थित आईटीसी रिफंड तंत्र तैयार करना उचित होगा जो पहले से ही जीएसटी कानून में उल्टी शूल्क स्थितियों के लिए उपलब्ध है। जीएसटी दर में कटौती को तेज आईटीसी रिफंड के साथ जोड़ने से उपभोक्ता सामर्थ्य सुनिश्चित होती है और वह भी बिना घरेलू निर्माताओं को दंडित किए।

नीति क्या कर सकती है?

तीन हस्तक्षेप विचारणीय हैं। पहला है दो- स्तरीय जीएसटी सुधार यानी 20,000 रुपये से कम कीमत वाले स्मार्टफोन पर तुरंत जीएसटी 18 फीसदी से घटाकर 5 फीसदी करना, और तेज आईटीसी रिफंड के साथ इसे जोड़ना ताकि मूल्य राहत दी जा सके वह भी बिना शुल्क व्युत्क्रम पैदा किए।

दूसरा है 20,000 रुपये से कम वाले खंड में पीएलआई सहयोग का विस्तार करना, जहां मूल्य संवर्धन सबसे कमजोर है।

तीसरा विशेष ध्यान देने योग्य है क्योंकि इसकी वित्तपोषण व्यवस्था पहले से मौजूद है। सरकार की डिजिटल भारत निधि के जरिये, जो डिजिटल समावेशन के लिए एक निर्धारित कोष है, 20,000 रुपये से कम कीमत वाले स्मार्टफोन पर प्रत्यक्ष उपभोक्ता सब्सिडी का विकल्प प्रदान किया जा सकता है, बिना नए बजट आवंटन की आवश्यकता के|

ऐसे में चीन का 2024 का अनुभव शिक्षाप्रद है। वहां 6,000 रेनमिनबी से कम कीमत वाले फोन पर 15 फीसदी प्रत्यक्ष उपभोक्ता रियायत ने मांग को बहुत अधिक बढ़ावा दिया और घरेलू विनिर्माण को सहारा मिला। भारत में इसके समकक्ष 20,000 रुपये से कम कीमत वाले फोन पर लक्षित और मौजूदा रिटेल व ई-कॉमर्स अधोसंरचना के माध्यम से उपलब्ध कराया जाए। इसे जीएसटी परिषद के किसी भी संशोधन की तुलना में ज्यादा तेजी से लागू किया जा सकता है। हमारे पास कोष मौजूद है और आवश्यकता भी है। नीति निर्णय अब वृद्धि को तेज करने और बड़े पैमाने पर मांग को सामने लाने का स्पष्ट अवसर पेश करता है।

जनसत्ता

Date: 11-04-26

जोखिम में बचपन

संपादकीय

इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी कि जिन नौनिहालों को हम देश का भविष्य मानते हैं, उनमें से बहुत सारे बच्चे आज बहुस्तरीय जोखिम के बीच से गुजर रहे हैं। बच्चों के खिलाफ होने वाले अपराधों के अनेक रूप के अलावा बाल तस्करी का संजाल आज इस कदर जटिल होता जा रहा है कि इससे निपटना सरकारों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गई है। हालांकि इस अपराध को काबू में करना और बच्चों को इस खतरे से बचाना सरकार की अनिवार्य जिम्मेदारी और सबसे ऊपर की प्राथमिकता में दर्ज होना चाहिए मगर हालत यह है कि देश के सुप्रीम कोर्ट को इस बारे में केंद्र और राज्य सरकारों को निर्देश देना पड़ रहा है कि वे बच्चों के खिलाफ इस अपराध को गंभीरता से लें। गौरतलब है कि बुधवार को एक याचिका पर सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने देश में बाल तस्करी के बढ़ते मामलों पर गहरी चिंता जताई और कहा कि संगठित गिरोह देशभर में सक्रिय हैं और अगर राज्य सरकारों और केंद्रशासित प्रदेशों ने तुरंत प्रभावी कदम नहीं उठाए, तो स्थिति बेकाबू हो सकती है।

हैरानी की बात यह है कि बाल तस्करी के फैलते जाल पर शीर्ष अदालत के सख्त रुख के बावजूद कई राज्यों ने अब तक न जरूरी रपट तैयार की है और न ही समितियां बनाई हैं। समस्या की गंभीरता को देखते हुए स्वाभाविक ही सुप्रीम कोर्ट ने राज्यों के लापरवाह रवैये पर नाराजगी जताई। दरअसल, करीब एक वर्ष पहले अदालत ने अपने एक फैसले में संगठित तस्करी के जाल को तोड़ने के लिए कई संस्थागत सुधारों के निर्देश दिए थे। इनमें तस्करी के मामलों में छह महीने के भीतर हर रोज सुनवाई करना, मानव तस्करी रोधी इकाइयों को मजबूत करना और जांच प्रक्रिया में सुधार करना शामिल था। अदालत ने राज्यों को यह निर्देश दिया था कि वे तस्करी के संभावित संवेदनशील स्थानों की पहचान और निगरानी के लिए राज्यस्तरीय समितियां बनाएं और लापता बच्चों के मामलों को तस्करी मान कर जांच शुरू करें। मगर इस मुद्दे पर

राज्य सरकारों के रुख का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि कई राज्यों ने अभी तक तय प्रारूप में रपट तक दाखिल नहीं की है। सरकारी तंत्र में इस इच्छाशक्ति के अभाव और उदासीनता की वजह क्या यह है कि जो बच्चे तस्करी का शिकार हो जाते हैं, उनमें ज्यादातर समाज के गरीब और कमजोर तबके से आते हैं ?

यह कोई छिपा तथ्य नहीं है कि देश में बाल तस्करी का संकट पिछले कुछ वर्षों के दौरान कितना गहरा गया है। खासतौर पर कोविड महामारी के बाद बच्चों के लापता होने के मामलों में काफी तेजी दर्ज की गई। बच्चों के खिलाफ अपराध के मामले में उत्तर प्रदेश की स्थिति ज्यादा गंभीर है। सही है कि लापता होने वाले तमाम बच्चों में से कईयों को पुलिस खोज लेती है, लेकिन उनमें से बहुतों की कोई खबर नहीं मिलती। सवाल है कि जिन बच्चों को नहीं खोजा जा पाता, वे कहां जाते हैं और उनके साथ क्या होता है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि देश भर में जो बच्चे गायब हो जाते हैं, उन्हें बाल मजदूरी से लेकर यौन शोषण और अपराध की दुनिया के अंतहीन दलदल में झोंक दिया जाता है। एक परिवार अपने बच्चे के लापता होने के बाद किस देश और दुख से गुजरता है, यह शायद बताने की जरूरत नहीं है। मगर कोई भी समाज और सत्ता बच्चों की तस्करी के मुद्दे को लेकर अगर गंभीर नहीं है, तो यह एक तरह से अपने ही भविष्य की त्रासदी को नजरअंदाज करना है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-04-26

देर से इस्तीफा

संपादकीय

देश के एक दागदार न्यायमूर्ति का इस्तीफा भले देर से आया हो, पर यह स्वागतयोग्य है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे यशवंत वर्मा ने राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मु को अपना इस्तीफा सौंपते हुए गहरी पीड़ा का इजहार किया है। वैसे, यह कहने में हर्ज नहीं कि जिस वजह से यह इस्तीफा हुआ है, उससे सबसे ज्यादा पीड़ा देशवासियों को हुई है। पिछले वर्ष 14-15 मार्च को दिल्ली स्थित उनके आधिकारिक आवास पर बरामद बेहिसाब नकदी के आरोपों की संसदीय जांच चल रही थी और महाभियोग की तैयारी थी। इस इस्तीफे से अव्वल तो यह होगा कि संसदीय जांच या महाभियोग का विशेष महत्व नहीं रह जाएगा। यह बात गौर करने की है कि राष्ट्रपति को भेजे गए इस्तीफे में न्यायमूर्ति वर्मा ने किसी भी कारण का जिक्र नहीं किया है, पर कारण को समझना कठिन नहीं है। वैसे, यह इस्तीफा संसदीय जांच से पहले आ जाता, तो बेहतर होता। किसी न्यायमूर्ति की संसदीय जांच पूरी न्यायपालिका के लिए चिंता की बात है। प्रबल आशंका यही थी कि इस जांच के बाद संसद में महाभियोग लाकर न्यायमूर्ति को हटाया जाता। एक तरह से अच्छा ही है, अब महाभियोग की नौबत नहीं आएगी।

दरअसल, संविधान ने न्यायपालिका में सेवारत लोगों को कुछ विशेष सुविधाएं दे रखी हैं, ताकि न्याय की प्रक्रिया निष्पक्ष एवं निर्भय ढंग से पूरी हो। यदि इन सुविधाओं या विशेषाधिकारों के दुरुपयोग की छोटी शिकायत भी होती है, तो यह

न्यायपालिका के लिए बहुत गंभीर बात है। संविधान ने तो पूरे विश्वास के साथ एक न्यायाधीश को इतनी सुरक्षा दी है कि उसे हटाना स्वयं न्यायाधीशों या सांसदों के लिए भी आसान नहीं है। यहीं बाबा साहब भीमराव आंबेडकर की याद आती है, जिन्होंने संविधान निर्माण के समय ही 25 नवंबर, 1949 को सबको चेताया था कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि उसे लागू करने वाले लोग बुरे या अयोग्य होंगे, तो वह अंततः बुरा साबित होगा। बाबा साहब की यह बात सदा सही साबित होगी। संविधान से चलने वाले देश में अच्छे लोगों की जरूरत कभी खत्म नहीं होगी। सावधान, बुरे तत्वों को यदि किनारे नहीं किया जाएगा, तो हमारा संविधान भी हाशिये पर चला जाएगा। अभी भी न्यायपालिका पर लोगों को सर्वाधिक भरोसा है और उसमें सेवारत विभूतियों की जिम्मेदारी है कि वे न्याय पर विश्वास बनाए रखें।

काश! ऐसा हो पाता कि लोकसभा अध्यक्ष को जांच के लिए तीन सदस्यीय समिति बनाने की जरूरत नहीं पड़ती। बहरहाल, दागी जजों को हटाने की प्रक्रिया आसान होनी चाहिए। गौर करने की बात है, इस मामले की सर्वोच्च न्यायालय ने आंतरिक जांच कराई थी, जिसमें न्यायमूर्ति वर्मा के स्पष्टीकरण को असंतोषजनक माना गया था। क्या सर्वोच्च न्यायालय के पास यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह शक की स्थिति में किसी न्यायाधीश को सेवा से अलग कर सके? यह विडंबना है, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्रवाई के लिए कार्यपालिका को सूचित किया और तब मामला विधायिका तक पहुंचा। यहां यह कहने में हर्ज नहीं कि विधायिका की कार्यप्रणाली सुस्त रही और देश में सवाल उठते रहे। बेशक, ऐसे मामलों में त्वरित निर्णयों की जरूरत है और इसके लिए जरूरी विधायी संशोधन जल्दी होने चाहिए। दाग या दोष की किसी आशंका का त्वरित और कड़ी कार्रवाई से ही पटाक्षेप किया जा सकता है। इस देश की असली ताकत अर्थात आम आदमी को न्यायपालिका के दामन पर एक छोटा दाग भी मंजूर नहीं है।

Date: 11-04-26

एक कानून के चक्कर में कहीं पहचान खो न जाए

इमरान प्रतापगढ़ी, (सांसद, राज्यसभा)

समान नागरिक संहिता के प्रति भारतीय जनता पार्टी का दृष्टिकोण संवाद का नहीं, बल्कि एक छिपे हुए आदेश का है। जिस तत्परता से इसे आगे बढ़ाया जा रहा है, उसे देखते हुए एक सीधा सवाल उठता है- अभी क्यों? बिना सहमति बनाने की धैर्यपूर्ण प्रक्रिया के, राज्य-दर-राज्य यह आग्रह क्यों? इसका उत्तर सुधार में नहीं, राजनीति में निहित है।

'एक देश, एक कानून' का नारा सुनने में आकर्षक लग सकता है, पर इसके भीतर एक गहरी चिंता छिपी है। भारत जैसे विविधरंगी देश में एकरूपता कभी निष्पक्ष नहीं होती। वह हमेशा किसी-न-किसी चयन का परिणाम होती है। आज कई नागरिक एक सरल प्रश्न पूछ रहे हैं- यह कानून किसका होगा? किन परंपराओं को इसमें स्थान मिलेगा? उत्तराखंड और गुजरात जैसे राज्यों

में हाल के मॉडल ने इन चिंताओं को और गहरा किया है। ऐसे प्रावधान, जो निजी संबंधों को नियंत्रित करने की कोशिश करते हैं, यहां तक कि सहजीवन संबंधों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाते हैं, राज्य के निजी जीवन में हस्तक्षेप को लेकर गंभीर सवाल खड़े करते हैं। यह सुधार नहीं, दखल है।

इस बहस में एक और वर्ग है, जिसकी आवाज अक्सर अनसुनी रह जाती है- भारत का आदिवासी समुदाय। ये लोग लंबे समय से अपनी पारंपरिक व्यवस्थाओं के आधार पर जीवन जीते आए हैं, जो उनकी पहचान से अविभाज्य है। संविधान की छठी अनुसूची के प्रावधान इन परंपराओं की रक्षा करते हैं। फिर भी, एकरूपता की यह कोशिश एक मौन संदेश देती है कि विविधता कोई समस्या है, जिसे 'सुधारा' जाना चाहिए। मेरा सवाल यह भी है कि क्या संविधान बनने से लेकर अब तक समान नागरिक संहिता न होने से देश का कोई आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक नुकसान हुआ है? क्या किसी के पास इस तरह का कोई आंकड़ा है, जिसमें वह बता सके कि अगर समान नागरिक संहिता रही होती, तो हम यहां से वहां पहुंच गए होते? क्या कोई यह सिद्ध कर सकता है कि समान नागरिक संहिता का सीधा संबंध डॉलर की बढ़ती कीमत और रुपये के अवमूल्यन से है? क्या कोई मुझे समझा सकता है कि समान नागरिक संहिता न होने की वजह से ही भारत विश्वगुरु नहीं बन पा रहा? क्या कभी किसी देश ने सामरिक या व्यापारिक समझौते को इसलिए रोक दिया कि आपके देश में समान नागरिक संहिता नहीं है?

जहां भी विषमता है, उसे चुनौती दी जानी चाहिए। न्याय चयनात्मक नहीं हो सकता और न ही बिना वैधता के थोपा जा सकता है। यदि सुधार कुछ समुदायों को लक्ष्य बनाता हुआ प्रतीत हो और दूसरों को अनदेखा करता हो, तो वह अपनी विश्वसनीयता खो देता है। यदि उसे बिना परामर्श के लागू किया जाए, तो वह अपनी स्वीकार्यता खो देता है। वास्तविक परिवर्तन तब आता है, जब लोग सुधार के सहभागी बनते हैं, उसके विषय नहीं।

यहां हमारे दल (कांग्रेस) का दृष्टिकोण स्पष्ट है। हम सुधार के विरोधी नहीं हैं, मगर हम थोपे जाने के विरोधी हैं। हमारा मानना है कि जीवन के सबसे निजी पहलुओं को प्रभावित करने वाले कानून संवाद, सहभागिता और विश्वास से उत्पन्न होने चाहिए। जो कानून विश्वास के बिना लोगों के निजी जीवन में प्रवेश करता है, वह एकता नहीं बनाता। वह भय पैदा करता है। जो नीति लोगों से उनकी पहचान को त्यागने की अपेक्षा करती है, वह राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकती। वह उसे कमजोर करती है। यही वजह है कि हमार पुरखों, संविधान-निर्माताओं ने भारतवर्ष की विविधता को ध्यान में रखते हुए सेना में भी अलग-अलग जाति, कुल, परंपरा व भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर अलग रेजिमेंट बनाए।

यूसीसी, यानी समान नागरिक संहिता के वर्तमान स्वरूप का मैं इसलिए विरोध नहीं करता कि मुझे परिवर्तन से डर है, बल्कि इसलिए कि मैं अपने देश को समझता हूं। यह देश इसलिए टिका रहा है, क्योंकि इसने अपने लोगों को स्वयं के साथ बने रहने की अनुमति दी है, जबकि वे एक बड़े समूह का हिस्सा भी हैं। यह संतुलन नाजुक है। इसे थोपकर कायम नहीं रखा जा सकता। मुझे लगता है कि 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का नारा देने वाले इस संस्कृति की जड़ में मट्ठा डालने का काम कर रहे हैं।